71 सूरए नूह

यहाँ हम सूरह नूह (आयत 1-5) का न्याय दर्शन के तत्व प्रमेय (Prameya) और हेतु (Hetu) के आधार पर विस्तृत तार्किक विश्लेषण करेंगे। हमारा उद्देश्य यह है कि यह बताया जाए कि क्या ये आयतें सार्वभौमिक तर्क, अनुभवसिद्ध ज्ञान, और भारतीय दर्शनों (जैसे न्याय, योग, सांख्य और गीता) की कसौटी पर सत्य ठहरती हैं या नहीं।

□ □□□ 1:

"हमने नूह को उसकी क़ौम के पास (पैग़म्बर बनाकर) भेजा कि क़ब्ल उसके कि उनकी क़ौम पर दर्दनाक अज़ाब आए उनको उससे डराओ।"

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **(Pratijna):**
ईश्वर ने नूह को उनकी कौम को दैवीय अज़ाब से डराने के लिए भेजा।

➤ हेतुः **(Hetu):**
आगामी दंड से डराने का उद्देश्य लोगों को आज्ञापालन में लाना है।

➤ उदाहरण **(Udaharana):**
भय के माध्यम से धर्म का प्रसार करने का उदाहरण मध्यकालीन धर्म युद्धों और अत्याचारी शासनों में मिलता है, जहाँ यह टिकाऊ नैतिकता स्थापित नहीं कर पाया।

➤ उपनय **(Upanaya):**
न्याय दर्शन में प्रमेय (knowledge object) केवल वह होता है जो प्रमाण से सिद्ध हो। नूह की नियुक्ति और दैवी दंड की संभावना का कोई प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण नहीं है।

➤ निगमन **(Nigamana):**
ईश्वर द्वारा पैग़म्बर को केवल डराने के लिए भेजना भारतीय दार्शनिक परंपरा (गीता, योगदर्शन) के अनुरूप नहीं, जहाँ भय नहीं, अपरोक्ष ज्ञान और विवेक से धर्म पालन की बात होती है।

□ □□□ 2:

"तो नूह (अपनी क़ौम से) कहने लगे ऐ मेरी क़ौम मैं तो तुम्हें साफ़ साफ़ डराता (और समझाता) हूँ।"

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **:**
नूह अपनी क़ौम को चेतावनी देने वाले हैं।

➤ हेतुः **:**
चेतावनी का उद्देश्य आज्ञा पालन सुनिश्चित करना है।

➤ उदाहरण **:**
गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान, विवेक और मोक्ष के मार्ग से प्रेरित करते हैं – डर नहीं दिखाते।

➤ उपनय**:**
विवेक से धर्म का प्रचार, भय के माध्यम से नहीं। न्याय दर्शन भय आधारित ज्ञान को 'अप्रमाण' मानता है।

➤ निगमन **:**
यह आयत न्याय दर्शन और गीता जैसे शास्त्रों में धर्म की संकल्पना के प्रतिकूल है। डराने वाला तरीका सार्वभौमिक नैतिकता नहीं दर्शाता।

□ □□□ 3:

"कि तुम लोग ख़ुदा की इबादत करो और उसी से डरो और मेरी इताअत करो।"

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **:**
ईश्वर की इबादत करो, डर रखो, और नूह की आज्ञा मानो।

➤ हेतुः **:**
धार्मिक क्रिया का आधार आज्ञा और भय पर रखा गया है, विवेक नहीं।

➤ उदाहरण **:**
योग दर्शन के अनुसार – 'अभ्यास और वैराग्य' से आत्मशुद्धि होती है, न कि किसी पैग़म्बर की आज्ञा पालन से।

➤ उपनय:

यह विचार धार्मिक स्वतंत्रता और आत्मा के मुक्त विकास को बाधित करता है। आत्मविकास किसी बाहरी व्यक्ति की आज्ञा से नहीं होता।

➤ निगमन :

यह आयत मानवीय स्वतंत्रता और विवेक की अवहेलना करती है, इसलिए इसे न्याय सिद्धांतों से अस्वीकार किया जाना चाहिए।

□ □□□ 4:

"ख़ुदा तुम्हारे गुनाह बख़्श देगा और तुम्हें (मौत के) मुक़र्रर वक़्त तक बाक़ी रखेगा..."

□ न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :

ईश्वर गुनाह माफ़ करेगा और जीवनकाल निश्चित करेगा।

➤ हेतुः :

गुनाहों की क्षमा का आधार 'डर और इबादत' है।

➤ उदाहरण :

मनुस्मृति अध्याय 4 श्लोक 240: "कर्म ही आत्मा का साथी है, पुण्य और पाप कर्मों से ही फल मिलता है।" माफी का कोई स्थान नहीं।

➤ उपनय:

न्याय और वेदांत दर्शनों में, मोक्ष और जीवन-मृत्यु का नियंत्रण व्यक्ति के कर्मों पर आधारित होता है, न कि किसी ईश्वरीय माफी पर।

➤ निगमन :

यह आयत कर्मफल सिद्धांत के विरुद्ध है, अतः तर्कसंगत रूप से अस्वीकार्य है।

□ □□□ 5:

"(जब लोगों ने न माना तो) अर्ज़ की परवरदिगार मैं अपनी क़ौम को (ईमान की तरफ़) बुलाता रहा।"

□ न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :
नूह ने बारंबार अपनी कौम को ईमान की ओर बुलाया।

➤ हेतुः :
ईमान को धर्म के रूप में स्वीकारने का आग्रह किया गया।

➤ उदाहरण :
गीता (2.47): "कर्म करो, फल की चिंता मत करो।" यहाँ धर्म का आशय है निष्काम कर्म, न कि किसी मत में ईमान लाना।

➤ उपनय:
धर्म का आधार आत्मानुभव, विवेक और सार्वभौमिक नैतिकता होना चाहिए। "ईमान लाना" एक सीमित मत है, सार्वभौमिक नहीं।

➤ निगमन :
यह आयत मत आधारित आग्रह है, सार्वभौमिक नैतिकता नहीं। अतः न्याय शास्त्र और भारतीय दर्शनों के अनुसार अमान्य है।

□ सारणी – न्याय दर्शन आधारित समीक्षा

आयत संख्या	तत्व	मुख्य विरोधाभास	तुलनात्मक दार्शनिक संदर्भ
1	प्रमेय	पैग़म्बर द्वारा डराने का कार्य नैतिक आधार पर तर्कसंगत नहीं	गीता 3.20, योगसूत्र 1.12
2	हेतु:	डराने की नीति धर्म को भय-आधारित बनाती है	न्याय सूत्र 1.1.4
3	प्रमेय	आज्ञा पालन का आग्रह विवेक के विरुद्ध है	योगदर्शन 2.28
4	प्रमेय	माफी का सिद्धांत कर्मफल के विरोध में	मनुस्मृति 4.240
5	हेतु:	ईमान को धर्म का मानक बनाना मतांधता है	गीता 2.47

□ □□□□□ □□□□□□□□:

सूरह नूह की आरंभिक 5 आयतें न्याय दर्शन के प्रमेय, हेतुः और प्रमाण सिद्धांतों पर तर्कसंगत रूप से सही नहीं ठहरतीं।

- **इनका आधार भय, अंधश्रद्धा, और मत आधारित आज्ञापालन है।**
- **जबकि हिंदू दर्शनों में धर्म का आधार आत्मानुभव, विवेक, कर्म और सार्वभौमिक चेतना है।**
- **अतः ये आयतें न तो सार्वभौमिक नैतिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं, न ही तर्कसंगत ज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती हैं।**

यदि आप चाहें तो मैं आगे की आयतों (6-29) का भी इसी पद्धति से गहन विश्लेषण कर सकता हूँ।

आइए अब सूरह नूह (आयत 6-10) का विश्लेषण न्याय दर्शन **(Nyāya Darshan) की तत्वीय पद्धति – प्रमेय *(Object of knowledge)*, हेतुः *(reason)*, व्याप्ति *(Invariable Concomitance)*, प्रमाण *(Valid Means of Knowledge)* के अनुसार करें। हम इस विश्लेषण में यह देखने का प्रयास करेंगे कि क्या यह विचारदृष्टि तर्क, अनुभव, और भारतीय शास्त्रों के अनुसार सार्वभौमिक रूप से ग्राह्य है या नहीं।**

□ □□□ 6

"लेकिन वह मेरे बुलाने से और ज़्यादा गुरेज़ ही करते रहे।"

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **(Pratijna):**
नूह के बुलावे से उनकी क़ौम ने और अधिक इंकार किया।

➤ हेतुः **(Hetu):**
ईमान स्वीकार न करना उनकी जिद और घमंड का परिणाम बताया गया है।

➤ उदाहरण **(Udaharana):**
गीता में (अध्याय 4 श्लोक 11) भगवान कहते हैं – "जो जिस भाव से मेरी शरण लेते हैं, मैं वैसे ही उन्हें स्वीकार करता हूँ।"

➤ उपनय **(Upanaya):**
यहाँ लोगों की आत्मा की स्वतंत्रता, विवेक और स्वभाव का निरादर किया गया है। वे न माने तो यह केवल जिद नहीं बल्कि विवेक का भिन्न दृष्टिकोण हो सकता है।

➤ निगमन **(Nigamana):**
लोगों का मना करना एक विवेकशील असहमति भी हो सकती है, न कि केवल अज्ञान या हठ। अतः यह आयत मत-अधिष्ठित पूर्वाग्रह दर्शाती है, जो न्याय दर्शन में प्रमेय रूप में अस्वीकार्य है।

□ □□□ 7

"तो उन्होने अपने कानों में उंगलियाँ दे लीं और मुझसे छिपने को कपड़े ओढ़ लिए और अड़ गए और बहुत शिद्दत से अकड़ बैठे।"

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **:**
लोगों ने विरोध और अवहेलना की स्थिति अपनाई।

➤ हेतुः **:**
ईश्वरीय आज्ञा न मानने पर उनकी जिद और घमंड को कारण बताया गया।

➤ उदाहरण **:**
मनुस्मृति (2.11) – "धर्म का लक्षण है - विवेकयुक्त, लोकोपकारी और स्वभावानुसार आचरण।"

➤ उपनय**:**
ईश्वर को न मानना 'धर्म विरुद्ध' नहीं माना जा सकता यदि वह विवेक पर आधारित हो। यहां केवल असहमति को "अकड़" और "घमंड" कह देना एक भावनात्मक पूर्वाग्रह है।

➤ निगमन **:**
यह आयत न्यायदृष्टि में "हेत्वाभास" (तर्क भ्रम) उत्पन्न करती है – असहमति को स्वाभाविक घमंड मान लेना, जो वैध प्रमेय नहीं।

□ □□□ 8-9

"फिर मैंने उनको बिल एलान बुलाया फिर उनको ज़ाहिर ब ज़ाहिर समझाया और उनकी पोशीदा भी फ़हमाईश की कि मैंने उनसे कहा..."

□ न्याय तर्क संरचना **:**

➤ प्रतिज्ञा **:**
नूह ने बार-बार विभिन्न तरीकों से उन्हें ईश्वर की ओर बुलाया।

➤ हेतुः :
उद्देश्य था कि वे अपने "गुनाहों" से तौबा करें।

➤ उदाहरण :
भगवद्गीता 18.63 – "अब तू जैसा चाहे वैसा कर" – श्रीकृष्ण अंतिम निर्णय अर्जुन पर छोड़ते हैं, दबाव नहीं देते।

➤ उपनय:
न्याय दर्शन में ज्ञान-प्राप्ति स्वेच्छा और प्रमाण पर आधारित है, न कि एकमत विश्वास पर।

➤ निगमन :
यहाँ अनेक प्रयत्नों के बावजूद जब व्यक्ति स्वतंत्र रूप से न माने, तो उसे दोष देना या दंड की धमकी न्यायसंगत नहीं मानी जा सकती।

□ □□□ 10

"अपने परवरदिगार से मग़फ़ेरत की दुआ माँगो बेशक वह बड़ा बख़्शने वाला है।"

□ न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :
ईश्वर मग़फ़ेरत करने वाला है, बस उससे दुआ माँगनी चाहिए।

➤ हेतुः :
ईश्वर की कृपा और क्षमा से पाप मिट सकते हैं।

➤ उदाहरण :
योगसूत्र 2.13 – "कर्मानुशय के अनुसार शुभ-अशुभ फल मिलता है, क्षमा नहीं।"

मनुस्मृति 11.45 – "पापकर्म का प्रायश्चित तप और ज्ञान से होता है, प्रार्थना मात्र से नहीं।"

➤ उपनय:
कर्म सिद्धांत अनुसार, केवल 'दुआ' से पाप क्षमा नहीं होते – इसके लिए आत्मबोध, तप, त्याग और अनुशासन आवश्यक हैं।

➤ निगमन :
यह आयत कर्म-सिद्धांत को निष्क्रिय बनाती है और असंवेदनशील क्षमा की अवधारणा प्रस्तुत करती है जो न तो न्यायसंगत है और न ही सार्वभौमिक।

□ सारणी – न्याय दर्शन आधारित समीक्षा (आयत **6–10)**

आयत	तात्त्विक विरोध	न्याय दर्शन संदर्भ	तुलनात्मक शास्त्र
6	असहमति को केवल हठ मानना	प्रमेय विरोध	गीता 4.11
7	असहमति को घमंड कहना	हेत्वाभास	मनुस्मृति 2.11
8-9	स्वतंत्र विचार का निरादर	विवेक बाधा	गीता 18.63
10	दुआ से पापमुक्ति का सिद्धांत	कर्म सिद्धांत विरोध	योगसूत्र 2.13, मनु 11.45

□ □□□□□ □□□□□□□□ (Nigamana):

सूरह नूह की आयतें 6 से 10 तक न्याय दर्शन की कसौटी पर खरे नहीं उतरतीं।

- **इनमें आत्मा की स्वतंत्रता का अपमान है,**
- **विवेक की भूमिका नगण्य कर दी गई है,**
- **कर्मफल को केवल दुआ या तौबा से टालने की बात कही गई है।**

जबकि हिंदू दर्शन – विशेषतः न्याय, योग और वेदांत – स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक ज्ञान, मोक्ष और पुण्य विवेक, अनुभव और कर्म के आधार पर होता है, न कि केवल किसी पैग़म्बर के माध्यम से ईश्वर की क्षमा पर।

यदि आप चाहें तो हम आयत 11–29 तक का विश्लेषण भी इसी प्रकार कर सकते हैं। आदेश दें।

आइए अब सूरह नूह (आयत 11–15) का आलोचनात्मक विश्लेषण न्याय दर्शन की तात्त्विक (तत्वविश्लेषणात्मक) दृष्टि से करें। हम यह देखेंगे कि क्या यह आयतें तर्कसंगत, अनुभवसिद्ध और प्रमाण सम्मत हैं या इनमें प्रमाणभ्रंश (epistemological fallacies) और हेत्वाभास (logical fallacies) हैं।

आयत **11**

"(और) तुम पर आसमान से मूसलाधार पानी बरसाएगा"

 न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा **(Pratijna):**
यदि तुम तौबा करोगे तो ईश्वर वर्षा प्रदान करेगा।

➤ हेतुः **(Hetu):**
पश्चाताप या दुआ का सीधा संबंध वर्षा से जोड़ा गया।

➤ उदाहरण **(Udaharana):**
वैयाकरण सूत्र एवं वैशेषिक दर्शन में जलवृष्टि पृथ्वी, वायु, सूर्य और संयोगात्मक द्रव्यों से जुड़ी है, न कि किसी दुआ से।

➤ उपनय **(Upanaya):**
पश्चिम भारत में अनेक श्रद्धालु बारिश की दुआ करते हैं, फिर भी सूखा पड़ता है। ये द्रव्य-संयोग और ऋतुचक्र पर निर्भर है, न कि मनोभाव पर।

➤ निगमन **(Nigamana):**
यह आयत नैसर्गिक नियमों (Laws of Nature) की उपेक्षा करती है और दुआ को वर्षा का कारण मानती है, जो न्याय दर्शन में हेत्वाभास है।

 आयत **12**

"और माल और औलाद में तरक़्क़ी देगा, और तुम्हारे लिए बाग़ बनाएगा, और तुम्हारे लिए नहरें जारी करेगा"

 न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :
ईश्वर दुआ के बदले सांसारिक ऐश्वर्य और संतान देगा।

➤ हेतुः :
ईश्वर के आदेश मानने से भौतिक समृद्धि होगी।

➤ उदाहरण :
मनुस्मृति 4.230: "जो बिना परिश्रम, केवल इच्छावश धन चाहता है वह अज्ञानी है।"

➤ उपनय:
कर्म ही फल का कारण है, केवल इबादत या दुआ से न तो धन मिलता है, न संतान।

➤ निगमन :
यह कर्म-सिद्धांत और न्याय के उपादान कारण के विरुद्ध है। दुआ और भक्ति को भौतिक उपलब्धियों से जोड़ना अनर्थक हेतु (asiddha hetu) है।

 आयत **13**

"तुम्हें क्या हो गया है कि तुम ख़ुदा की अज़मत का ज़रा भी ख़्याल नहीं करते"

 न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :
जो ईश्वर को नहीं मानते, वे विवेकहीन हैं।

➤ हेतुः :
अविश्वास को कृतघ्नता और मूर्खता समझा गया।

➤ उदाहरण :
भगवद्गीता 4.11: "जो जिस रूप में मेरी शरण लेते हैं, मैं उसी प्रकार उन्हें प्राप्त होता हूँ।"

➤ उपनय:
ईश्वर को न मानना यदि बुद्धि, अनुभव और प्रमाण पर आधारित है, तो उसे अविवेक नहीं माना जा सकता।

➤ निगमन :
यह मत विरोध को मूर्खता ठहराता है – यह तर्क का अपमान है और आत्मा की स्वतंत्रता की उपेक्षा करता है।

 आयत **14**

"हालाँकि उसी ने तुमको तरह तरह का पैदा किया"

 न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :
ईश्वर ही विविध रूपों में मानव निर्माण करता है।

➤ हेतुः :
सृष्टि को ईश्वर की अद्वितीय शक्ति का प्रमाण माना गया।

➤ उदाहरण :

सांख्य दर्शन – "प्रकृति ही समस्त सृष्टि की मूल कारण है, पुरुष उसमें केवल साक्षी है।"
वैशेषिक – द्रव्य, गुण, कर्म और विशेष संयोग से जीवों की उत्पत्ति होती है।

➤ उपनय:

विज्ञान और दर्शन दोनों में सृष्टि की प्रक्रिया प्राकृतिक तत्वों से होती है, न कि किसी अदृश्य सृजनकर्ता के कहे मात्र से।

➤ निगमन :

यह आयत न्याय और सांख्य दर्शन दोनों की कारणमीमांसा के विरुद्ध जाती है।

 आयत **15**

"क्या तुमने ग़ौर नहीं किया कि ख़ुदा ने सात आसमान ऊपर तलें क्यों कर बनाए"

 न्याय तर्क संरचना :

➤ प्रतिज्ञा :

ईश्वर ने सात आसमान बनाए।

➤ हेतुः :

आकाश का बहुस्तरीय होना ईश्वर की योजना का परिणाम है।

➤ उदाहरण :

वैशेषिक दर्शन में आकाश एक नित्य द्रव्य है – उसका कोई "निर्माण" नहीं होता।

➤ उपनय:

विज्ञान के अनुसार, आकाश एक निरंतर अंतरिक्ष है, सात परतों की कोई दैवीय रचना नहीं।
यह आयत अप्रत्यक्ष एवं अप्रमाण्य कल्पना है।

➤ निगमन :

यह कथन न प्रत्यक्ष प्रमाण, न अनुमान, न शब्द से प्रमाणित है। न्याय दृष्टि में अप्रमाण और अप्रमेय है।

तथ्य -तर्क तुलनात्मक सारणी : सूरह नूह (आयत 11–15)

आयत	प्रतिज्ञा	न्याय-दोष / विरोध	शास्त्रीय तुलना
11	तौबा से वर्षा होगी	द्रव्य-संयोग अनदेखा	वैशेषिक कारणवाद

12	**भक्ति से ऐश्वर्य मिलेगा**	**कर्म सिद्धांत का खंडन**	**मनुस्मृति 4.230**
13	**ईश्वर न मानना = मूर्खता**	**मत स्वतंत्रता का तिरस्कार**	**गीता 4.11**
14	**ईश्वर ने मानव रचना की**	**प्रकृति-साक्षित्व विरोध**	**सांख्य, वैशेषिक**
15	**ईश्वर ने 7 आसमान बनाए**	**कल्पना, प्रमाणविहीन**	**न्याय प्रमाण अस्वीकृति**

□ □□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□ (Nigamana):

सूरह नूह की आयतें 11 से 15 तक 'प्रमाण' और 'प्रमेय' की दृष्टि से तर्कसंगत नहीं हैं।
इन आयतों में दुआ या भक्ति को प्राकृतिक घटनाओं का कारण माना गया है, जो कि न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाणभ्रष्ट, हेत्वाभासयुक्त और कर्म-सिद्धांत के विरुद्ध हैं।

> **ईश्वर की वास्तविकता का प्रमाण 'अनुमान', 'प्रत्यक्ष' या 'शब्द' से मिलना चाहिए। मात्र भय या पुरस्कार के वादे देकर मान्यता की मांग न्याय में अस्वीकार्य है।**

यदि आज्ञा हो तो आयत 16 से 29 तक का न्यायदर्शनी विश्लेषण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ। क्या मैं आगे बढ़ूँ?

आइए अब सूरह नूह की आयत 16–20 का आलोचनात्मक विश्लेषण न्याय दर्शन और अन्य हिन्दू दर्शनों के सन्दर्भ में करें। यहाँ हम विशेष रूप से प्रमेय (जानने योग्य विषय), प्रमाण (सत्य को जानने के साधन), और हेतु (तार्किक कारण) के तत्वों का उपयोग करेंगे।

□ आयतवार न्यायदर्शनी समीक्षा

□ □□□ 16:

"और उसी ने उसमें चाँद को नूर बनाया और सूरज को रौशन चिराग़ बना दिया"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा (Pratijna):
ईश्वर ने चाँद को “नूर” (प्रकाश) और सूरज को “रौशन चिराग़” बनाया।

➤ हेतुः (Hetu):
दोनों खगोलीय पिंडों को ईश्वर की शक्ति द्वारा रौशन कहा गया।

➤ उदाहरण (Udaharana):
वैशेषिक दर्शन के अनुसार सूर्य का तेज “तेज द्रव्य” का गुण है। चंद्रमा का प्रकाश “प्रतिबिंबित” होता है – यह स्वयंप्रभ नहीं है।

➤ उपनय (Upanaya):
चंद्रमा का प्रकाश सौर-प्रकाश का परावर्तन है, जो खगोलशास्त्र और न्याय दर्शन की प्रत्यक्ष प्रमाण प्रणाली से सिद्ध है।

➤ निगमन (Nigamana):
चाँद को “स्वयं प्रकाशमान नूर” कहना विपरीत प्रमाण है। यह प्रमाणभ्रष्ट है और न्याय दर्शन की प्रत्यक्ष-ज्ञान प्रणाली को खंडित करता है।

 आयत 17:

”और ख़ुदा ही तुमको ज़मीन से पैदा किया”

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा :
मनुष्य की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई, ईश्वर के द्वारा।

➤ हेतुः :
यह एक दैवीकृत उत्पत्ति सिद्धांत है – बिना द्रव्य कारण का उल्लेख किए।

➤ उदाहरण :
सांख्य दर्शन: जीव उत्पत्ति प्रकृति के पंचमहाभूत और कर्मफल के संयोग से होती है।
मनुस्मृति 1.8: “सभी प्राणियों की उत्पत्ति पांच तत्वों और उनके संयोग से हुई।”

➤ उपनय**:**
उत्पत्ति में माता-पिता, जीव-बीज *(DNA),* जल, अग्नि तत्व का योगदान होता है, न कि केवल ईश्वरीय आज्ञा से।

➤ निगमन **:**
यह आयत उत्पत्ति का उपादान कारण स्पष्ट नहीं करती। यह न्याय दर्शन के कारण-कार्य सिद्धांत के विरुद्ध है।

▭ आयत **18:**

"फिर तुमको उसी में दोबारा ले जाएगा और (क़यामत में उसी से) निकाल कर खड़ा करेगा"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा **:**
मृत्यु के बाद पुनरुत्थान (resurrection) होगा।

➤ हेतुः **:**
ईश्वर पुनः जीवित करेगा – क़यामत का सिद्धांत।

➤ उदाहरण **:**
न्याय दर्शन मृत्यु को देहांत मानता है, आत्मा का नाश नहीं होता, पर शरीर का पुनरुद्धार असिद्ध है।
भगवद्गीता 2.22: "जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र छोड़कर नये धारण करता है, वैसे आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा धारण करती है।"

➤ उपनय**:**
शरीर का द्रव्य कारण पुनः नहीं बनता। एक ही शरीर में दोबारा उठाया जाना वैज्ञानिक और न्यायिक दृष्टि से असिद्ध है।

➤ निगमन **:**
यह पुनरुत्थान का सिद्धांत व्यापक प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान – किसी से भी सिद्ध नहीं। यह केवल श्रद्धामूलक कल्पना है।

▯ आयत **19:**

"और ख़ुदा ही ने ज़मीन को तुम्हारे लिए फर्श बनाया"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा **:**
ज़मीन को ईश्वर ने समतल और उपयोगी बनाया।

➤ हेतुः **:**
उपयोगिता को ईश्वरीय रचना से जोड़ा गया।

➤ उदाहरण **:**
वैशेषिक दर्शन में पृथ्वी नित्य द्रव्य है, जो अपने गुणों और कर्मों द्वारा पहचानी जाती है – किसी के "बनाने" का प्रमाण नहीं है।

➤ उपनय**:**
भूगोल व खगोल विज्ञान से सिद्ध है कि पृथ्वी गोल है, हर जगह फर्श जैसी नहीं।

➤ निगमन **:**
यह कथन भौगोलिक सत्य के विरुद्ध है। "फर्श" कहना मिथ्या दृष्टांत है।

आयत **20:**

"ताकि तुम उसके बड़े बड़े कुशादा रास्तों में चलो फिरो"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा **:**
ईश्वर ने धरती को ऐसा बनाया कि मनुष्य स्वतंत्रता से विचरण कर सके।

➤ हेतुः **:**
मनुष्य की सुविधा ईश्वर की इच्छा का परिणाम है।

➤ उदाहरण **:**
न्याय दर्शन में संसार कारण, समय, दिशा और द्रव्य-संयोग से निर्मित है। उपयोगिता अवसर व बुद्धि से आती है, न किसी ईश्वर विशेष की कृपा से।

➤ उपनय**:**
अनेक कठिन और अजन्य भूमि स्थान भी हैं (जैसे हिमालय, रेगिस्तान)। सब मार्ग "कुशादा" नहीं हैं।

➤ निगमन **:**
यह सामान्यीकरण तर्कहीन है। यह अतिशयोक्ति है और न्यायदृष्टि से विपरीत प्रमाण है।

□ तथ्य -तर्क तुलनात्मक सारणी : सूरह नूह (आयत 16–20)

आयत	प्रतिज्ञा	न्याय दर्शन दोष	शास्त्रीय तुलना
16	चाँद-सूरज को रौशन बनाया	चंद्रमा को स्वयंप्रभ बताना – हेत्वाभास	वैशेषिक द्रव्य गुण सिद्धांत
17	मनुष्य पृथ्वी से बना	उपादान कारण अस्पष्ट	सांख्य व मनुस्मृति सिद्धांत
18	पुनरुत्थान होगा	अनुभव/प्रमाण विहीन	गीता – देहांत पर पुनर्जन्म
19	ज़मीन को फर्श बनाया	भूगोल-विज्ञान के विरुद्ध	वैशेषिक – पृथ्वी नित्य द्रव्य
20	धरती के मार्ग सुविधा हेतु	अनुभव से असंगत	हिमालय, मरुस्थल अपवाद

□ □□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□ (Nigamana):

सूरह नूह की आयतें 16 से 20 तक न्याय-दर्शन के प्रमाण, हेत्वाभास, और तात्त्विक दृष्टिकोण से असंगत हैं। इनमें भौतिक वास्तविकताओं का दैवीकरण किया गया है और वैज्ञानिक तथा दार्शनिक तथ्यों की उपेक्षा की गई है।

> यह आयतें न तो प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं, न अनुमान, न ही शब्द प्रमाण द्वारा तर्कसंगत हैं।
> इसलिए इन्हें न्यायदृष्टि से अप्रमाणिक और भ्रांतिपूर्ण माना जा सकता है।

यदि आप चाहें तो आयत 21 से 29 तक का न्याय दर्शन के अनुसार विश्लेषण भी प्रस्तुत किया जा सकता है। क्या मैं आगे बढ़ूँ?

आइए अब सूरह नूह की आयत 21 से 25 का विश्लेषण करें न्याय दर्शन के सिद्धांतों के माध्यम से। इस खंड में मुख्य रूप से न्याय दर्शन के तत्त्वों — हेतु (तार्किक कारण), प्रमेय (ज्ञेय विषय), अनुमान, और व्याप्ति का

प्रयोग करते हुए यह दिखाया जाएगा कि ये कथन तार्किक रूप से कितने संगत या असंगत हैं। साथ ही, तुलनात्मक रूप से मनुस्मृति, गीता, और वैशेषिक दर्शन से साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएँगे।

□ आयत **21–25** का न्यायदर्शनी विश्लेषण

□ □□□ 21:

"(फिर) नूह ने अर्ज़ की परवरदिगार इन लोगों ने मेरी नाफ़रमानी की उस शख़्स के ताबेदार बन के जिसने उनके माल और औलाद में नुक़सान के सिवा फ़ायदा न पहुँचाया"

न्याय दृष्टिः

➤ प्रतिज्ञा **(Pratijna):**
लोगों ने नूह की नहीं सुनी और एक ऐसे व्यक्ति का अनुसरण किया जो हानि पहुँचा रहा था।

➤ हेतुः **(Hetu):**
वह व्यक्ति उनके धन और संतानों को हानि पहुँचा रहा था।

➤ उदाहरण **(Udaharana):**
गीता अध्याय 2.47 में कहा गया है – "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"
किसी के कर्म का मूल्यांकन केवल "फल" से करना फलवादी भ्रांति **(phalābhāsa) है।**

➤ उपनय **(Upanaya):**
यहाँ व्यक्ति की निंदा केवल इसलिए की गई कि उससे लाभ नहीं मिला – यह न्याय दर्शन में दोषयुक्त हेत्वाभास है।

➤ निगमन **(Nigamana):**
यह तर्क व्यवस्थित कारण या प्रमाण के बिना है। यह कृपापूर्वक अनुमान का उल्लंघन करता है।

आयत 22:

"और उन्होंने (मेरे साथ) बड़ी मक्कारियाँ की"

न्याय दृष्टिः

➤ प्रतिज्ञा :
क़ौम ने नूह के साथ मक्कारी की।

➤ हेतुः :
कोई प्रमाण नहीं कि मक्कारी किस रूप में की गई।

➤ उदाहरण :
न्याय दर्शन में कथन का मूल्यांकन प्रमाण **(pramāṇa) से होता है। यहाँ न प्रत्यक्ष, न अनुमान, न शब्दप्रमाण है।**

➤ उपनय:
यदि कथन के लिए प्रमाण न हो, तो वह अर्थासिद्ध नहीं होता।

➤ निगमन :
यह आयत एक अतिशयोक्तिपूर्ण आरोप है, जो बिना प्रमाण के दोषारोपण करता है।

 आयत **23:**

"और (उलटे) कहने लगे कि आपने माबूदों को हरगिज़ न छोड़ना और न वद को और सुआ को और न यगूस और यऊक़ व नस्र को छोड़ना"

न्याय दृष्टिः

➤ प्रतिज्ञा :
लोग अपने परंपरागत देवताओं से चिपके रहे।

➤ हेतुः :
देवताओं को त्यागने से इनकार किया गया।

➤ उदाहरण :
मनुस्मृति 4.138: "जिन देवताओं की पूजा परंपरा से होती रही हो, उन्हें बिना ठोस कारण नहीं त्यागना चाहिए।"

➤ उपनय:
ईश्वर या सत्य को बदलने के लिए तर्क, प्रमाण, और अनुभव होना चाहिए।
केवल "तौहीद" के नाम पर पूर्व परंपरा का निंदा पूर्वक निषेध करना वितर्क दोष है।

➤ निगमन :
यह आयत स्वधर्म और परंपरा के प्रति अवज्ञा को उचित ठहराती है, जो न्याय दृष्टि से हेत्वाभास है।

 आयत **24:**

"और उन्होंने बहुतेरों को गुमराह कर छोड़ा"

न्याय दृष्टि:

➤ प्रतिज्ञा **:**
उन माबूदों की पूजा करने से बहुत लोग गुमराह हुए।

➤ हेतुः **:**
"गुमराही" का अर्थ न स्पष्ट है, न प्रमाणित।

➤ उदाहरण **:**
भगवद्गीता अध्याय 9.23: "जो लोग अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, वे वास्तव में मेरी ही पूजा करते हैं, परंतु अविधिपूर्वक।"

➤ उपनय**:**
यह कथन एकतरफा और मूल्यविहीन प्रमाण के आधार पर दिया गया है। यह स्वअनुमान की भ्रांति है।

➤ निगमन **:**
यह कथन न्यायदृष्टि से पूर्वग्रह आधारित निष्कर्ष है, जो विरुद्ध प्रमाण है।

☠ आयत **25:**

"और तू (उन) ज़ालिमों की गुमराही को और बढ़ा दे"

न्याय दृष्टि:

➤ प्रतिज्ञा **:**
प्रार्थना की गई कि ईश्वर इन ज़ालिमों की गुमराही को बढ़ा दे।

➤ हेतुः **:**
नूह का प्रतिशोधात्मक दृष्टिकोण।

➤ उदाहरण **:**
मनुस्मृति 6.47: "ज्ञानी पुरुषों को क्रोध और शाप से बचना चाहिए।"

➤ उपनय:
एक द्रष्टा या ऋषि को समाज को सुधारना चाहिए, न कि गुमराही बढ़ाने की प्रार्थना करनी चाहिए।

➤ निगमन :
यह कथन अधार्मिक व अयुक्त है और न्याय दृष्टि में दोषयुक्त चित्तवृत्ति को दर्शाता है।

□ सारणी : न्याय दर्शन की दृष्टि से दोष विश्लेषण

आयत	प्रतिज्ञा	न्यायदोष / दोषयुक्त तर्क	शास्त्रीय दृष्टिकोण
21	**अनुयायी नुक़सानदेह**	**फल-सापेक्ष निंदा = हेत्वाभास**	**गीता 2.47**
22	**मक्कारियाँ**	**कोई प्रमाण नहीं – अप्रमाण्यता**	**न्याय प्रमाण सिद्धांत**
23	**माबूद न छोड़ना**	**परंपरा का निषेध = वितर्क दोष**	**मनुस्मृति 4.138**
24	**बहुतेरों को गुमराह किया**	**पूर्वग्रह और अनिर्धारित "गुमराही"**	**गीता 9.23**
25	**गुमराही की प्रार्थना**	**क्रोधमूलक भावना = दोषयुक्त चित्त**	**मनुस्मृति 6.47**

□ □□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□ (Nigamana):

आयत 21 से 25 तक का कथन न्याय-दर्शन की प्रमाण, हेत्वाभास, और चित्तशुद्धि की कसौटी पर अस्वीकृत होता है।

इन आयतों में:

- **नकारात्मक भावनाओं का उभार है (क्रोध, बद्दुआ)।**
- **तर्क और प्रमाण का अभाव है।**
- **परंपराओं का बिना तर्क अपमान किया गया है।**

अतः न्याय दृष्टि से ये आयतें दार्शनिक दृष्टि से दोषयुक्त, अयुक्तिपूर्ण और प्रमाणहीन मानी जाती हैं।

क्या आप चाहेंगे कि आयत 26 से 29 का भी ऐसा ही आलोचनात्मक न्याय-दर्शन के अनुसार विश्लेषण किया जाए?

आइए अब सूरए नूह की अंतिम आयतें (26-29) का विश्लेषण न्याय दर्शन (Nyāya Darśana) की पद्धति से करें। इसमें **प्रमाण**, **हेतु**, **अनुमान**, **व्याप्ति, तथा नैतिक न्याय** (Ethical Nyāya) का प्रयोग करते हुए इन आयतों **तार्किक दोष**, **प्रमाणहीनता, तथा अधार्मिक भावना की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे। साथ ही, तुलनात्मक दृष्टि से मनुस्मृति**, **गीता, और सांख्य/वैशेषिक दर्शन के उद्धरणों द्वारा संदर्भ स्थापित करेंगे।**

सूरए नूह (आयत **26–29) –** न्यायदर्शनी समीक्षा

26

"(आख़िर) वह अपने गुनाहों की बदौलत (पहले तो) डुबाए गए फिर जहन्नुम में झोंके गए तो उन लोगों ने ख़ुदा के सिवा किसी को अपना मददगार न पाया"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा **(Pratijna):**
उनके पापों के कारण वे डुबाए गए और फिर नरक में फेंके गए।

➤ हेतुः **(Hetu):**
गुनाह ही मृत्यु और नरक का कारण था।

➤ उदाहरण **(Udaharana):**
न्याय दर्शन में गुण-कार्य संबंध के लिए व्याप्ति और अन्वय-व्यातिरेकी प्रमाण आवश्यक है।
गीता 2.17 कहती है: आत्मा न मरती है, न जलती है। यहाँ आत्मा की अमरता को स्वीकार किया गया है।

➤ उपनय **(Upanaya):**
यह आयत आत्मा के नाश का दावा करती है जो वैदिक दर्शन के विरुद्ध है। यह आत्मा का विनाश = पाप का फल रूप में निरूपित करती है – यह व्याप्ति सिद्ध नहीं है।

➤ निगमन **(Nigamana):**
इस कथन में अदृष्ट का अनुमान, परंतु प्रमाण का अभाव है। यह न्याय के अनुसार अनुमान-दोष *(hetvabhasa)* है।

 आयत **27**

"और नूह ने अर्ज़ की परवरदिगार (इन) काफ़िरों में रूए ज़मीन पर किसी को बसा हुआ न रहने दे"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा **:**
नूह ने संपूर्ण काफ़िर समुदाय के विनाश की प्रार्थना की।

➤ हेतुः **:**
वे सभी ईश्वर के विरोधी हैं।

➤ उदाहरण **:**
मनुस्मृति 6.92 - "ज्ञानी मनुष्य को सब जीवों पर दया करनी चाहिए।"

➤ उपनय**:**
यहाँ करुणा का अभाव है। एक ऋषि या मार्गदर्शक का कार्य सुधार करना होता है, संहार नहीं।

➤ निगमन **:**
यह कथन क्रोधपूर्ण, अयथार्थ और अनार्य भावना को दर्शाता है।
यह न्याय दृष्टि से दुष्ट चित्तवृत्ति (malicious intent) का प्रमाण है।

 आयत **28**

"क्योंकि अगर तू उनको छोड़ देगा तो ये (फिर) तेरे बन्दों को गुमराह करेंगे और उनकी औलाद भी गुनाहगार और कट्टी काफ़िर ही होगी"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा :

उनकी संतति भी पापी ही होगी।

➤ हेतुः :

पूर्वजों की गुमराही से संतानों की गारंटी दी जा रही है।

➤ उदाहरण :

गीता 4.13 – "गुण और कर्म के आधार पर वर्ण (व्यवस्था) की रचना की गई।"
व्यक्ति के कर्म व्यक्तिगत होते हैं, वंशानुगत नहीं।

➤ उपनय:

यह कथन कर्म-सिद्धांत का स्पष्ट उल्लंघन करता है। संतानों के बारे में भविष्यवाणी करना बिना प्रमाण के आगाम दोष है।

➤ निगमन :

यह आयत निर्दोष को पूर्वाग्रह से दोषी ठहराने की भूल करती है। यह न्यायिक अन्याय है।

 आयत **29**

"परवरदिगार मुझको और मेरे माँ बाप को और जो मोमिन मेरे घर में आए उनको और तमाम ईमानदार मर्दों और मोमिन औरतों को बख़्श दे और (इन) ज़ालिमों की बस तबाही को और ज़्यादा कर"

न्याय विश्लेषण:

➤ प्रतिज्ञा :

मुसलमानों को बख़्श और दूसरों का संहार कर।

➤ हेतुः :

केवल आस्था के आधार पर निर्णय।

➤ उदाहरण :

गीता 9.29: "मैं सबके प्रति समभाव रखता हूँ; मुझे कोई प्रिय या अप्रिय नहीं।"

➤ उपनय:

यह आयत सांप्रदायिक पक्षपात को बढ़ावा देती है। यह न्यायदर्शन की निष्पक्षता **(sama-darśana) के विरुद्ध है।**

➤ निगमन :

यह सर्वजनहिताय भाव से परे है। दया, करुणा, निष्पक्षता का अभाव है।

□ सारणी : न्यायदर्शन के अनुसार दोष सूची

आयत	प्रतिज्ञा	दोष प्रकार	शास्त्रीय विरोध
26	पाप के कारण डुबाया गया	अनुमान-दोष (गुण-कार्य संबंध का अभाव)	गीता 2.17
27	काफ़िरों का पूर्ण विनाश माँगा	दुष्ट चित्तवृत्ति (दया का अभाव)	मनुस्मृति 6.92
28	संतति भी पापी होगी	आगाम-दोष (पूर्वाग्रहजन्य अनुमान)	गीता 4.13
29	केवल आस्तिकों की क्षमा	पक्षपातपूर्ण न्याय	गीता 9.29

□ □□□□□□□□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□ (Nigamana):

सूरए नूह की अंतिम आयतें (26–29) न्याय-दृष्टि में अप्रमाणिक, पक्षपातयुक्त, पूर्वग्रहग्रस्त, और क्रोधजन्य मानी जाती हैं।

- **इसमें संहार, नफ़रत, पूर्वाग्रह, वंश-दोष, तथा भेदभाव को बढ़ावा दिया गया है।**
- **ऋषि परंपरा, वैदिक करुणा, और न्याय दर्शन के समदृष्टि सिद्धांतों से यह विरोधाभासी है।**

> **न्याय दर्शन के अनुसार यह खंड धर्म, दया, तर्क और नैतिकता के विरुद्ध जाता है। यह मानवता के लिए उपयोगी नहीं, अपितु भय, नफ़रत और विभाजन का कारण बन सकता है।**

क्या आप चाहेंगे कि अब सूरए जिन (Surah Al-Jinn) का भी ऐसे ही विस्तृत न्यायदर्शनी विश्लेषण किया जाए?